ISSN No. 2349-4654
नाद – नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक
वर्ष : 1, अंक : 1, नवम्बर 2014

राग संरक्षण में संगीत घरानों का योगदान

राय बहादुर सिंह
पीएच.डी., शोध छात्र, संगीत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

सार-संक्षेप

प्रस्तुत शोध-पत्र में राग को संरक्षित रखने में घरानों के महत्त्व एवं योगदान पर चर्चा की गई है। जैसा कि हम जानते हैं कि मध्यकाल की राजनैतिक व्यवस्था करवट बदल रही थी, उसने संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक दोनों पक्षों को प्रभावित किया। संगीतकार राजाश्रयों में रहकर अपने-अपने राज्यों में अपनी राग परम्परा को आगे बढ़ा रहे थे। विभिन्न राज्यों में मैत्री भाव न होने, संचार व संपर्क के साधनों की कमी आदि विभिन्न कारणों से राग संगीत की अलग-अलग धाराऐं बहने लगीं जो आगे चलकर घराना कहलाई। इन घरानों ने रागों के संरक्षण, संवर्धन एवं इनको आधुनिक युग तक पहुंचाने में मुख्य भूमिका निभाई। घरानों के प्रसाद से आज रागों की अमूल्य निधि हमारे पास मौजूद है। यही नहीं विभिन्न घरानों के प्रतिभासम्पन्न कलाकारों व विद्वजनों ने अपने घराने की विशिष्टता दर्शाने हेतु न केवल अपने कला कौशल्य से रागों के इस खज़ाने में वृद्धि की बल्कि घरानागत विशेषताओं के कारण आज हमें एक ही नाम के राग विभिन्न स्वरावलियों में सुनने को मिलते हैं। साथ ही रागों में स्वरों की एकरुपता होते हुए भी प्रस्तुतिकरण में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। शैली विशेष में निपुणता प्राप्त करने के प्रयासों के कारण ही ठुमरी जैसी शैलियों का विकास हुआ व इनके साथ कुछ विशेष रागों के नाम सदा के लिए जुड़कर अमर हो गए। इन्हीं सब बिन्दुओं पर चर्चा इस पत्र में की गई है तथा यह भी प्रयास किया गया है कि किस प्रकार इन घरानों की अपनी राग परम्परा के प्रति श्रद्धा व निष्ठा ही थी कि मध्य काल के अन्त (अंग्रेज़ी शासन) में जब राजाश्रय का साया सर से उठ गया तो भी घरानागत कलाकारों व विद्वानों नें रागों की अमूल्य धरोहर को नहीं खोया और अपने शिष्यों व परिजनों के द्वारा इसे नई पीढ़ी को हस्तान्तरित किया। रागों के क्रियात्मक पक्ष द्वारा बंदिशों के संरक्षण में घरानागत पद्धति के महत्त्व को भी दिग्दर्शित किया गया है।

शोध-पत्र

राग भारतीय संगीत की आत्मा है। इसलिए भारतीय संगीत का सारा ताना बाना रागों के इर्द-गिर्द ही बुना जाता है। किसी गायक अथवा वादक की कला की उत्कृष्टता यही मानी जाती है कि उसने किस हद तक राग के नियमों का पालन किया है। भारतीय संगीत में राग ही सीखे व सिखाए जाते हैं। इसलिए भारतीय संगीत की चर्चा करते ही राग शब्द ध्यान में आता है।

राग गायन की यह परम्परा कोई नई नहीं बल्कि सदियों पुरानी है जिसे प्राचीन काल ने जन्म दिया, मध्यकाल ने पोषित किया व आधुनिक काल यानि हम तक पहुंचाया। भारतीय संगीत की यह रागदारी परम्परा कभी गीतियों के द्वारा, कभी प्रबन्ध और कभी ध्रुवपद आदि शैलियों के द्वारा प्रवाहित होती आई है।

मध्यकाल में ध्रुवपद के समकक्ष ख्याल गायन शैली प्रचार में आई। इसी के साथ घराना शब्द तानसेन के बाद के मुगल काल में प्रचार में आया। यद्यपि भारतीय संगीत परम्परा का केन्द्र बिन्दु राग ही था लेकिन प्रस्तुतिकरण में भिन्नता ने घरानों को जन्म दिया और धीरे-धीरे यह धारणा प्रबल होती गई। इन घरानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत पाए जाते हैं यथा राजनैतिक परिस्थितियाँ, मुसलमान और हिन्दू संगीतज्ञों में भाषा भेद, मुसलमान संगीतकारों का हिन्दू साहित्य से अनभिज्ञ होना, कण्ठ ध्वनि दोष, संचार एवं यातायात के साधनों का आभाव आदि।[1] इस संदर्भ में एक और तथ्य भी विचारणीय है। वह यह कि घरानों का मुख्य सम्बन्ध ख्याल गायकी के साथ रहा। इसका कारण यह मालूम होता है कि ख्याल गायन विधा में गायक को राग नियमों के अन्तर्गत रहते हुए भी अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर राग में भाव, चमत्कार, माधुर्य व वैचित्र्य दिखाने की आजादी रहती है। किसी ने लयकारी के आधार पर चमत्कार दिखाया तो किसी ने स्वर लगाव के द्वारा भाव सृजन किए।

नए-नए प्रयोगों ने प्रस्तुतिकरण में व्यक्तिगत भिन्नता के कारण विविधता को जन्म दिया। इस प्रयत्न में कुछ गायकों ने अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयोग करके अपनी गायकी को उत्तम शैली में पहुँचा दिया। इन्हीं गायकियों ने शिष्यों-प्रशिष्यों की परम्परा के रूप में कई पीढ़ियों तक चलने के बाद घरानों का रूप ले लिया। पश्चात्वर्ती काल में इन्हीं घरानों ने भारतीय संगीत की राग सम्पदा के संरक्षण व इसको आधुनिक युग तक पहुंचाने में मुख्य भूमिका निभाई। प्राचीन राग, प्राचीन बन्दिशें, विधागत तकनीक, संगीतालंकरणों के शास्त्राधारित परम्परागत प्रयोगों का अनेकानेक शताब्दियों तक प्रवाहित होते चले आना गुरू शिष्य परम्परा के रूप में बह रही संगीत शिक्षा व्यवस्था का ही फल है।[2]

यह हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था की अनन्यता ही थी कि गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को इतनी घनिष्ठता प्रदान की गई थी कि वह शिक्षा का ही एक अनिवार्य अंग बन गया। अत: घराना परम्परा में भी इस प्राचीन सम्बन्ध का यथावत पालन किया गया।[3]

इन घरानों ने अपनी पैतृक राग परम्परा को निधि के रूप में सुरक्षित रखा और इसके निर्वाह के दायित्व को अपनाकर अपनी वंश व शिष्य परम्परा द्वारा आगे बढ़ाया। परम्परा के निर्माण और निर्वाह में विभिन्न कारण जुड़ते गये और घरानागत विशेषताएं रागों के साथ जुड़कर इनके पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्त्रण का कारण बनी। मध्यकाल भारतीय संगीत में प्रयोगात्मकता का युग रहा। बादशाहों को प्रसन्न करने के लिए तथा दरबारी प्रतियोगिताओं को जीतने के लिए बाध्य होने के कारण विभिन्न नए-नए चमत्कारिक प्रयोगों के फलस्वरूप प्रस्तुतिकरण में भेद होने के कारण गायन/वादन में भिन्नता और फलस्वरूप घरानों का जन्म हुआ। इसी प्रयोगात्मकता के दौर में कई शैलियों ने जन्म लिया। ठुमरी शैली इस दौर का एक अत्यन्त भावपूर्ण प्रयोग रहा। ठुमरी शैली प्रचलित हुई तो इसके साथ कुछ विशेष राग जुड़ गए जो कि ठुमरी की आवश्यकता के अनुरूप चंचल प्रकृति के थे। जैसे भैरवी, खमाज, तिलन्ग, काफी, गारा, पीलू, तिलक कामोद आदि, जिनका ठुमरी गायन में प्रयोग आज भी है।

घरानों द्वारा रागों के संरक्षण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बनीं बन्दिशें। विद्वजनों का मानना है कि किसी राग की बन्दिश सीखने से राग पकड़ में आ जाता है। एक अच्छी बन्दिश जो कि गुरूजनों से सीख कर अच्छी तरह से गा ली जाए तो वह राग की एक प्रमाण स्वरूप बन जाती है क्योंकि बन्दिश राग का मूर्त रूप होती है। राग के स्वरूप को अन्तर्मन में गुंजायमान करने का कार्य बन्दिश ही करती है। घराना परम्परा में इन बन्दिशों को राग शिक्षण का मुख्य साधन माना गया। हर एक घराने की बन्दिशों ने अपनी विशेष रीति की गान परम्परा के द्वारा जहाँ घरानों का प्रतिनिधत्व किया वहीं रागों की प्राचीन परम्परा की वाहक भी बनीं। घरानागत कलाकारों वाग्गेयकारों ने व्यक्तिगत विशेषताओं को प्रकट करने हेतु बन्दिशों में अपने उपनाम का प्रयोग किया। जिनमें से कुछ सुप्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं—प्रेम पिया (उस्ताद फैयाज खां, आगरा घराना), सबरंग (उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, पटियाला घराना), प्रणवरंग (पं ओंकारनाथ ठाकुर, ग्वालियर घराना) आदि। आज भी जब बन्दिश गाते समय रचनाकार का नाम आता है तो सुलझे हुए गायक कान पकड़कर रचनाकार के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं।

अपनी विशिष्ट गान परम्परा के अनुरूप ही विभिन्न घरानों ने तदुनरूप रागों का चयन कर अपनी परम्परा को आगे बढ़ाया। यथा ग्वालियर घराने में मुख्यत: प्रचलित राग ही गाए जाते हैं जैसे—अलहैया बिलाबल, यमन, भैरव, भैरव-बहार, सारंग, मुलतानी, श्री, भूप, कामोद, बसंत, हमीर, परज, गौड़ मल्हार, मल्हार, शंकरा आदि।[4] आगरा में प्रचलित रागों के साथ-साथ अप्रचलित रागों का भी प्रयोग रहा है। जैसे रामकली, केदार, गाराकान्हड़ा आदि। जयपुर की गायकी में अप्रचलित रागों का गायन विशेष रूप में सुनाई देता है जैसे काफी कान्हड़ा, रायसा कान्हड़ा, बिहागड़ा, खट, त्रिवेणी, पटबिहाग, पटमंजरी, जैतश्री इत्यादि।[5] किराना घरानें में भी प्रचलित रागों का प्रयोग ही पाया जाता है किन्तु यहाँ पूर्वांग प्रधान राग अधिकतर गाए जाते हैं जैसे तोड़ी, पूरिया, दरबारी, मालकौंस आदि। घरानों में विशेष प्रकार के रागों के चयन के अतिरिक्त घरानों में कुछ राग ऐसे भी हैं जोकि उसी घराने के प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा बनाए गए और ऐसे रागों का प्रचलन भी मुख्य रूप से उसी घराना विशेष में रहा। इस तरह घरानागत प्रणाली ने यहाँ बजुर्गों से प्राप्त राग-निधि को सम्भाला व आगे बढ़ाया, वहीं विभिन्न घरानागत कलाकारों व वाग्गेयकारों ने अपने कला-कौशल से नवीन राग निर्माण कर इसमें बृद्धि की। आज हमारे पास राग परम्परा के रूप में जो कुछ भी है वह घराना परम्परा के प्रसाद से ही है। यदि घराने न होते तो संगीत की यह परम्परागत विधा मध्ययुग व अंग्रेजों के युग में नष्ट हो गई होती। घरानों ने ही हमारी सांगीतिक संस्कृति की रक्षा की और कला के रक्षक का उत्तरदायित्व निभाया है।

इतिहासकारों की मान्यता है कि कोई भी सभ्यता तब तक किसी की गुलाम नहीं होती जब तक वह अपनी कला-संस्कृति को सम्भाल कर रखती है। अंग्रेज शासक इस बात से भलि-भांति ज्ञात थे इसलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति व संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए कोई कदम नहीं उठाए। फलस्वरूप जो कलाकार पूर्वकाल में राजाश्रय में रहकर कला के अभ्यास में कार्यरत रहते थे उन्हें जीवनयापन के लिए भी परिश्रम करना पड़ा। लेकिन ऐसी विकट परिस्थितियों में भी घरानागत कलाकारों ने राग सम्पदा का ह्रास नहीं होने दिया व अपने परिजनों व शिष्यों के द्वारा इसे नई पीढ़ी को हस्तान्तरित किया।

वास्तव में प्राचीन भारतीय संगीत की प्रभावशाली परम्परा का दर्पण यह घरानें ही हैं जिनके माध्यम से भारतीय संगीत की शुद्धता व सूक्ष्मता का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता है।[8] शास्त्र स्वर की व्यवहारिकता बताने में असमर्थ होता है। शास्त्र के माध्यम से संगीत के सैद्धान्तिक स्वरूप को संग्रहीत किया जा सकता है परन्तु क्रियात्मक स्वरूप को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने में विभिन्न रूप से गुरू-शिष्य परम्परा ही सशक्त माध्यम सिद्ध होती है। सर्वविदित है कि जौनपुरी, दरबारी, आसावरी, तोड़ी, और मुलतानी में अलग-अलग गन्धार लगते हैं। पूर्वी, श्री, भैरव और मारवा में ऋषभ अलग-अलग प्रकार का होता है। आज हमें अगर इन रागों के इस सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं तो यह गुरू-शिष्य परम्परा के रूप में चली आ रही घराना परम्परा की ही देन है। यदि शास्त्र गूंगे थे तो गायकों-वादकों ने उन्हें बोलना सिखाया और स्वरों की मीठी बाणी प्रदान की। उन्होंने शास्त्रों में लिखे संगीत का ठीक-ठीक अनुवाद अपने गायन-वादन से किया। यहाँ यह न समझा जाए कि शास्त्र पहले बने और बाद में उसका गायन-वादन। अपितु संगीत का क्रियात्मक पद पहले होता है तत्पश्चात् शास्त्र की रचना।

यह घराने भारतीय संगीत के स्तम्भ व इसकी अमूल्य निधि के रूप में भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली में गुरू-शिष्य परम्परा के महत्त्व की प्राचीनता का प्रतीक हैं। [10]

प्रत्येक घराने के कलाकारों ने विशेष रीति को अपनाकर राग परंपरा को आगे बढ़ाया। भले ही इसके पीछे कारण व्यक्तिगत या घरानागत विशेषता को दर्शाना रहा हो लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता अंतत: यह प्रयोग रागों के संरक्षण के लिए कारगर सिद्ध हुआ। विशेषता

का यह प्रदर्शन चाहे प्रत्येक घराने के चुने हुए विशेष रागों के रूप में रहा हो, व्यक्तिगत विशेषता दर्शाने हेतु उत्तम रीति की बंदिशों के निर्माण के रूप में या ठुमरी-टप्पा गायकी में विशेष प्रकृति के रागों के चयन के रूप में। भले ही कुछ विद्वजन घरानागत कलाकारों पर सकुचित सोच या भेदभाव का आरोप लगाएं किन्तु इस तथ्य से कत्तई इन्कार नहीं किया जा सकता कि राग-संगीत की जो निधि आज हमारे पास है उसको आधुनिक युग तक पहुंचाने में संगीत के इतिहास में घरानों का कोई और विकल्प नज़र नहीं आता। आज भी यह घरानें भारतीय राग संगीत के सच्चे स्वरूप के प्रतिनिध हैं।

पाद-टिप्पणियाँ

1. धर्मपाल, 2008, पृ. 15
2. धर्मपाल, 2008, पृ. 18
3. सक्सेना, 1990, पृ. 74
4. बांगरे, 1995, पृ. 24
5. परांजपे, 1992, पृ. 192
6. परांजपे, 1992, पृ. 194
7. शर्मा, 1995, पृ. 199
8. सक्सेना, 1990, पृ. 74
9. चौबे, 1984, पृ. 16
10. सक्सेना, 1990, 74-75

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चौबे, सुशील कुमार, संगीत के घरानों की चर्चा, वाराणसी : श्री महेश्वरी प्रेस, 1984

धर्मपाल। किराना घराने की गायकी एवं बंदिशों का मूल्यांकन : नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स, 2008।

परांजपे, शरच्चन्द्र, श्रीधर। संगीत बोध। भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1992

बांरगे, अरुण महादेवराव, ग्वालियर की संगीत परंपरा। हुबली : यशोयश प्रकाशन, 1995

मेहता, रमनलाल, आगरा घराना परंपरा गायकी और चीज़ें, बड़ौदा : भारतीय संगीत, नृत्य-नाट्य महाविद्यालय, 1969

शर्मा, स्वतन्त्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, इलाहाबाद : टी.एन. भार्गव एंड सन्ज, 1995

सक्सेना, मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर। चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1990